ISSN: 2349-4654, UGC: 1340-48783
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक वर्ष : 6, सेमिनार विशेषांक, जनवरी 2018

संगीत पारिजात के वाद्याध्याय

स्यामोश्री घोषाल

शोधार्थी, प्रदर्शन एवं दृश्य कला विद्यापीठ (एसओपीवीए), इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सार-संक्षेप

ध्वनि सर्वदा ही मनुष्य को आकर्षित करता रहा है चाहे वह संगीतात्मक ध्वनि ही क्यों ना हों। ध्वनि से लगाव ने ही मनुष्य को संगीतानुरागी तथा वाद्य निर्माण करने के लिए प्रेरित किया। प्राचीनकाल से ही संगीत विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की गई, जिसमें वर्णित वाद्यों के विवरण ही तत्कालीन संगीत के विकास की छवि को स्पष्ट करती है। मध्ययुग में पंडित अहोबल कृत संगीत पारिजात भी इसी श्रृंखला के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रमाणिक ग्रन्थ है। संगीत पारिजात के द्वितीय काण्ड 'वाद्य-ताल काण्ड' के वाद्याध्याय के अन्तर्गत वाद्यों को चार भागों में विभक्त किया गया—1. तत, 2. आनद्ध, 3. सुषिर तथा 4. घन। परन्तु इन चार वर्गों के अतिरिक्त एक अन्य वर्ग का भी वर्णन किया गया, जो आनद्ध तथा तत वाद्यों के लक्षणों से युक्त माना गया—1. ढक्का, 2. रवाब तथा 3.करचक्र। संगीत पारिजात में जिन वाद्यों का विवरण किया गया, उन वाद्यों के परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप आधुनिक संगीत वाद्यों में देखा जा सकता हैं। इस शोध-पत्र का उद्देश्य संगीत पारिजात में वर्णित वाद्यों के विपुल संग्रह को प्रस्तुत करना है।

मुख्य शब्द : वाद्याध्याय, संगीत, संगीत पारिजात, तत वाद्य, वाद्य ताल काण्ड

शोध-पत्र

वाद्य शब्द की उत्पत्ति 'वद' धातु में णिच और यत् प्रत्यय लगने से हुई हैं, जिसका अर्थ है—'सुस्पष्ट बोलना'। डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार—''संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने के उपकरण को 'वाद्य' कहा जाता हैं। इसी दृष्टि से प्राचीन काल में मानव कंठ को भी वाद्य माना गया है। चूँकि कंठ-वाद्य ईश्वर निर्मित है, अतएव मनीषियों ने मनुष्यों द्वारा निर्मित वाद्यों का ही मनन तथा वर्णन किया है।''[1]

संगीत की उत्पत्ति कब एवं कैसे हुई इस विषय में कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। भारतीय संगीत के समक्ष ग्रन्थों का एक अमूल्य भण्डार है। समय-समय पर लिखित ग्रन्थों में वर्णित वाद्यों के विवरण से ही तत्कालीन संगीत के विकसित स्वरूप की धारणा प्राप्त होती है। सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पंडित अहोबल कृत संगीत पारिजात इसी श्रृंखला का महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया। पंडित अहोबल ने संगीत पारिजात के द्वितीय काण्ड 'वाद्य-ताल काण्ड' में तत्कालीन वाद्यों के विपुल संग्रह को प्रस्तुत किया। लेखक ने पूर्व ग्रन्थकारों (यानि भरत से लेकर लेखक के समय तक) के समान वाद्यों को चार वर्गों में विभक्त किया है—1. तत 2. आनद्ध 3. सुषिर तथा 4. घन।

तदप्युदीरितं वाद्यं यस्मिन्नादस्तु जायते॥
चतुर्विधं तच्च ततमानद्धं सुषिरं घनम्॥3॥

(संगीतपारिजातः, द्वितीयःकाण्डः, पृष्ठ-80)

तत वाद्य

'तत' शब्द 'तनु' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—'विस्तार करना'। 'तनु' धातु में 'त' प्रत्यय लगाकर 'ततं' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है—जो व्याप्त और विस्तृत हो, जिसमें स्वर व्याप्त हों और उसका विस्तार किया जाए। तत वाद्य का अर्थ तन्तु वाद्य अर्थात् तना हुआ तार, रेशम का डोरा अथवा ताँत इत्यादि का बना वाद्य।[2]

संगीत पारिजात में तत वाद्यों के अन्तर्गत रुद्रवीणा, ब्रह्म वीणा, तंबुर, स्वरमण्डल, पिनाकी, किन्नरी, दण्डी तथा रावणस्य वीणाओं को वर्णन किया गया।

वाद्यं ततेति वीणा स्याष्ट धा सानिरूप्यते॥
रुद्रवीणा ब्रह्मवीणा तउबुरं स्वरमण्डलम्॥8॥
पिनाकी किन्नरी दंडी रावणस्य करोऽपरः।

(संगीतःपारिजातः, द्वितीयः काण्डः, पृष्ठ-80)

रुद्र वीणा

संगीत पारिजात में रुद्रवीणा को तत्कालीन सभी वीणाओं में महत्त्वपूर्ण माना गया। पंडित अहोबल ने सर्वप्रथम रुद्रवीणा का प्रयोग स्वरस्थान तथा राग निरूपण के लिए किया।

संगीत पारिजात में रुद्र वीणा को लोक-शास्त्र के अनुसार वर्णन किया गया। वीणा का प्रमाण बारह मुठि, दण्ड के तीन मुठि बायें पर वाम मेरु स्थित है,वाम मेरु दो अंगुली उँची होनी चाहिए, मेरु से तिलमात्रा उँचा कर्द अथवा कर्ह को रखना चाहिए। मेरु एवं कर्द को चार अंगुली ऊँचा रखना चाहिए ताकि मेरु से तारों को आसानी से कर्द (राधा गोविन्द संगीतसार के अनुसार कर्ह को लौकिक भाषा में घोडची कहा गया) तक

उतारा जा सके। मेरु से एक अंगुल नीचे तथा कर्ह से एक मुठी ऊपर दो तुम्बे को स्थापित किया गया। तुम्बे तथा दण्ड के बीच के स्थान जहाँ जुड़त है, उसे संगीतसार में चुनकण कहा गया। मेरु के वामपर्श्व के ऊपर की ओर मोरनी को स्थापित किया गया। तारों तथा कर्द के बीच में पके बाँस की वस्तु को स्थापित किया गया, जिसे आधुनिक समय में ब्रिज कहा जाता है। कर्ह एवं तारों के बीच के इस स्थान में यानि ब्रिज के ऊपर रेशमी डोरी की जावा को लगाया जाता है। इस डोरी को शिथिल करके तार से मधुर ध्वनि उत्पन्न किया जाता है। सारिका को मोम से चिपकाए जाते थे।

संगीत पारिजात में रुद्र वीणा में अनेक देवताओं का निवास स्थान माना गया हैं—''वीणा के दण्ड में शिव जी का निवास है, ताँत में पार्वती जी का निवास है, कुकुभ में विष्णु भगवान का निवास है, पत्रिका में लक्ष्मी जी का निवास है, तुम्बों में ब्रह्मा जी का निवास है, नाभी में सरस्वती जी का निवास है, मेरों में वासुकि नागराज का वास है, जीवा में विप्राधीश चन्द्रमा का वास है। मोरनी में नवग्रह देवता का वास है तथा मेरु में सभी देवताओं का वास है।'' वीणा सभी देवताओं से युक्त है, इस कारण यह सर्वमंगला कही जाती है।[3]

वीणा मेलन विधि

इस श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए पंडित अहोबल ने वीणा मिलाने की विधि का वर्णन किया। उत्तर के ग्रन्थकारों में अहोबल ने सर्वप्रथम रुद्रवीणा तथा इसकी चारों तन्त्रियों के मेलन का वर्णन किया है। रुद्रवीणा की प्रथम तन्त्री षड्ज में, द्वितीय पंचम, तृतीय-चतुर्थ तन्त्री क्रमशः मन्द्र षड्ज-पंचम में मिली होती है। दण्ड के दक्षिण भाग में तीन और तन्त्रियाँ है जो स्वर-संवाद को सिद्ध करने के लिए है, जिनका नाम 'श्रुति' है।[4]

तंग्रतः (?) स्वरसिदध्यर्थं चतस्त्रो मेरुकर्दयोः ॥ 16 ॥
वदंत्याद्याः सस्वरादीन् पस्वरादीन् द्वितीयकाः ॥
द्वे अग्रे अवशिष्टे स्तो मंद्रस्योक्ता अथो पुनः ॥17 ॥
दंडस्य दक्षिणे भागे तिस्त्रोऽन्याः स्वस्वदेशतः ॥
स्वरसंवादिसिद्ध्यर्थं ताश्च स्युः श्रुतिसंज्ञया ॥18 ॥

(संगीतःपारिजातः, द्वितीयः काण्डः, पृष्ठ-81)

पंडित अहोबल वीणा के तारों की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना करते समय मध्य षड्ज को मुख्य माना साथ ही उसी तार के बीच में तार षड्ज को स्थापित किया, यानि षड्ज ग्राम के षड्ज-पंचम भाव को महत्त्व देते हुए सरल एवं वैज्ञानिक ढंग से स्वरों की स्थापना की। जिसके फलस्वरूप ऋषभ तथा धैवत चतुश्रुतिक प्राप्त हुई। फिर भी संगीत पारिजात में पंडित अहोबल ने स्वरज्ञान हीन व्यक्ति को स्वरों का ज्ञान कराने के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। यही कारण है कि आधुनिक वीणाओं की मुख्य तन्त्रीयों को मध्यम में मिलाए जाते है, जिससे त्रिश्रुतिक ऋषभ एवं त्रिश्रुतिक धैवत की प्राप्ति होती है।

वादन प्रकार

संगीत पारिजात में रुद्र वीणा के छःह प्रकार बताए गए। साथ ही इन भेदों को तार की संख्या के आधार पर प्रतिपादित किया गया, इसके अतिरिक्त इन वीणाओं में कोई अन्तर नहीं है—

1. दो तंत्री युक्त रुद्र वीणा, **नकुल वीणा** कहलाती है।
2. तीन तंत्री युक्त रुद्र वीणा, **त्रितंत्री वीणा** कहलाती है।
3. चार तंत्री युक्त रुद्र वीणा को **राजधानी वीणा** कहते हैं।
4. पाँच तंत्री युक्त रुद्र वीणा को **विपंची वीणा** कहते हैं।
5. छः तंत्री युक्त रुद्र वीणा, **सर्वरी वीणा** कहलाती है।
6. सात तंत्री युक्त रुद्र वीणा को **परिवादिनी वीणा** कहते हैं।

पंडित अहोबल ने सर्वप्रथम विपंची वीणा को पाँच तन्त्री युक्त माना जबकि भरत,पंडित शारंगदेव से लेकर पंडित अहोबल के पूर्व तक सभी विद्वानों ने विपंची वीणा को नौ तन्त्रियों युक्त माना। इस प्रकार पंडित अहोबल ने रुद्रवीणा के वादन विधि एवं वादक लक्षण को भी विस्तार से विवरण किया।

रुद्र वीणा में स्थापित एक सप्तक में बारह स्वर-स्थानों के कारण भारतीयों ने ग्यारह रुद्र तथा एक महारुद्र के दर्शन किये। इसीलिए इस वीणा को रुद्र वीणा कहा जाने लगा।[5] सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इसके अनेक भेदों का वर्णन संगीत पारिजात में मिलता है। इसके पश्चात सेनी घराने के वादक इसे सरस्वती वीणा(वीन) तथा दक्षिण भारत में तंजौरी वीणा कहा जाने लगा।

ब्रह्मा वीणा

संगीत पारिजात में ब्रह्मा वीणा को रुद्र वीणा का एक प्रकार माना गया। इसका तुम्बा लकड़ी का माना गया। वीणा का नीचली भाग रुद्र वीणा से चौड़ा एवं दीर्घ प्रमाण था। सारिकाएँ भी रुद्र वीणा के समान थी। ब्रह्मा वीणा सात तारों से युक्त वीणा है,जिसमें से प्रथम दो तार लोहे है, और उन तारों में षड्ज को स्थान दिया गया। इन दो तारों को आठ भागों में बाँटा जो पूरी ध्वनि वाली थी। तृतीय तथा पंचम तार लोहे का तथा चतुर्थ और छः तार धातु से निर्मित बताए गए। तृतीय एवं पंचम तार को भीं आठ भागों में बाँटा गया, जिससे तार मोटी प्रतीत होती है। इस वाद्य में सप्तम तार को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया, इसका होना व न होना एक ही माना गया। इसको रुद्र वीणा के समान बजाया जाता है साथ ही गमक का प्रयोग अधिक होता है।

तंबुर

तंबुर शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख संगीत पारिजात में मिलता है। इस ग्रन्थ में तंबुर का सम्बन्ध तम्बरु मुनि से जोड़ा गया है। तंबुर दो प्रकार के माने गए है—1. निबद्ध एवं 2. अनिबद्ध।

1. निबद्ध तंबुर—दीर्घ प्रमाण युक्त वीणा, जिस वीणा में तीन व चार तारों को स्वरों में मिलाने के साथ ही वीणा के मध्यदेश में स्थित

सारिकाओं को भी मिलाने के लिए षड्ज को प्रमाण स्वर मानते है, उसे निबद्ध तंबुर कहा गया। दुसरे शब्दों में सारिका युक्त वीणा को ही निबद्ध वीणा को कहते है।

2. अनिबद्ध तंबुर—सात, पाँच व चार तारों से युक्त सारिका रहित वीणा को 'अनिबद्ध तुंबर' कहा गया।

स्वरमंडल

मंडल आकार वस्तु में स्वरों को स्थित करने से 'स्वरमंडल' निर्मित होती है। हर एक अंगुली के व्यवधान पर पृथक-पृथक स्वरों को स्थापित किया गया। अत: तीन सप्तकों से युक्त स्वरमंडल में इक्कीस तंत्रियाँ लगती है। मन्द्र मध्यम से तार षड्ज तक तार क्रमश: लम्बाई में छोटे होने के कारण एक-दूसरे से ऊँचे मिलते हैं। पंडित शारंगदेव कृत 'मत्तकोकिला वीणा' को ही पंडित अहोबल ने स्वरमंडल कहा है। वामहस्त के प्रयोग से ही गमक को उत्पन्न करने का विधान दिया है।

आधुनिक स्वरमण्डल चार कोणवाला वाद्य है एवं जिसमें 21 से लेकर 36 तारें होती है। संगीत पारिजात में वर्णित स्वरमंडल को आधुनिक स्वरमण्डल का पूर्व रूप माना जा सकता है।

पिनाकी

'संगीत पारिजात' में लिखा है कि पिनाकी रुद्र वीणा से आधी है। उसे घोड़े के पूँछ के बालों से धनुषाकार बाँधा जाता हैं। जहाँ जोड़ हो वहाँ कपड़े लपेटे जाए। उसका मध्य भाग नारियल काठ या काँसे का बना हो। उसके पार्श्व भाग को बायें हाथ की उँगलियों से पकड़कर दाहिने हाथ से उस धनुष को खींचकर इच्छानुसार स्वर उत्पन्न किया जाए।[6]

किन्नरी

शारंगदेव ने अपने संगीत-रत्नाकर में किन्नरी वीणा का लक्षण बताते हुए कहा है कि यह दो प्रकार की होती है—लघ्वी और बृहती।[7] पंडित अहोबल ने पारिजात में लघ्वी वीणा को वर्णन किया। संगीत-पारिजात के अनुसार इसमें तीन तुम्बे तथा दो तार लगे होते हैं। इसमें अंकुश के समान मेरु होता है। तन्त्री का अन्तर सात अंगुल होता है, जो तिरछा होता है तथा दोनों तार एक साथ उलटे बजाये जाते हैं।[8]

दंडी वीणा

दंडी वीणा का सर्वप्रथम उल्लेख संगीत पारिजात में मिलता है। संगीतसार के वर्णन के अनुसार यह त्रितन्त्री वीणा का एक भेद भी कही जा सकती है। त्रितन्त्री वीणा के उस रूप का विकास जिसमें तुम्बा दण्ड के दक्षिण पार्श्व में लगाया जाता था सितार और तम्बूरे के रूप में हुआ तथा उसी त्रितन्त्री के दूसरे रूप का विकास जिसमें तुम्बा दण्ड के वाम पार्श्व में लगाया जाता था, दण्डी वीणा के रूप में हुआ।[9]

संगीत पारिजात के अनुसार दण्डी वीणा के दण्ड के वाम पार्श्व में तुम्बा लगाया जाता था, तार मेरु के सहारे नहीं लगाये जाते, तीन तार युक्त वीणा तथा दण्डी के जिस तुम्बे की मुख होगी, उसी तरफ तारों को बाँधा जाए,तो उसे दण्डी वीणा कहा जाएगा। दण्डी वीणा दो प्रकार के होते—1. निबद्ध एवं 2. अनिबद्ध। यहाँ निबद्ध दण्डी वीणा को वर्णन किया गया है।

आनद्ध वाद्य

तत वाद्यों के पश्चात् पंडित अहोबल आनद्ध वाद्यों की ओर अग्रसर हुए। आनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत आठ वाद्यों को वर्णन किया गया—मृदंग, दुंदभि, भेरी, रुंजा, डमरु, पटह, चक्रवाद्य तथा हुडुक्क।

अष्टावानद्धभेदा स्युर्मृदंगादिप्रभेदात: ॥
मृदंगो दुदुभिर्भेरी रुंजाडमरुपट्टहा: ॥69॥
चक्रवाद्यं कुडुक्काख्यं इत्येषां लक्षणं ब्रवे ॥

(संगीतपारिजात:, द्वितीय:काण्ड:, पृष्ठ-85)

मृदंग

अहोबल के अनुसार मृदंग लाल चन्दन,लोहे अथवा लकड़ी का बना होता था। मृदंग की लम्बाई, बारह मुट्ठी तथा मध्य की गोलाई इससे कुछ अधिक होती थी। इसका मुख बारह मुट्ठी तथा मध्य की गोलाई इससे कुछ अधिक होती थी। इसका मुख बारह मुख अंगुल का होता था। मुख के बाहरी ओर लोहे के दो कड़े लगे हुए होते थे जिनमें बीस- बीस छिद्र होते थे। इन दोनों ओर के मुखों को चमड़े की बद्धियों से कस दिया जाता था। बद्धि को इच्छानुसार खींचने के लिए दायीं ओर लकड़ी की गिट्टकें (कर्णिकाएँ) लगी रहती थी। सुन्दर ध्वनि उत्पन्न करने के लिए दायी ओर के मुख पर मध्य में छह अंगुल स्थान पर लौहचूर्ण लगा रहता था तथा बायीं ओर आटा गूँधकर लगाया जाता था।[10]

पंडित लालमणि मिश्र जी के अनुसार अहोबल के काल तक दक्षिण मुख के मसाले में लौहचूर्ण का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था जो आज के मसाले की मुख्य वस्तु है। अहोबल ने रत्नाकर के मर्दल को मर्दल न कहकर मृदंग कहा है और उसका जो वर्णन किया है वह आधुनिक पखावज के समान ही है।

पंडित अहोबल द्वारा मृदंग का विवरण एवं पंडित लालमणि मिश्र जी के कथनानुसार यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मृदंग ही आधुनिक पखावज है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है, उस समय इस वाद्य का नाम मृदंग था, कालान्तर में मृदंग के स्थान पर ''पखावज'' कहा जाने लगा। मृदंग के मध्य भाग में ब्रह्मा का वास-स्थान माना गया तथा अन्य सभी देवताओं का भी निवास स्थान माना गया। इसलिए इसको सर्वमंगल नाम दिया गया।

इस ग्रन्थ में मृदंग के पाटाक्षर ,वादन लक्षण एवं वादक लक्षण को सुस्पष्ट रूप से वर्णन किया गया।

दुंदभि

संगीत पारिजात में दुंदुभि के दो भाग बताए गए, एक धातु तथा दूसरा भाग कांसे से निर्मित बताए गए। इस प्रकार दो स्वर वाले दो नग वाद्य को दुंदभि

कहा गया। यह चमड़े का मढ़ा हुआ तथा चमड़े की ही डोरियों से कसा हुआ होता है। दुंदंभि के दो नग में से एक बड़ा नगाड़ा है,जो गम्भीर होता है एवं दुसरा नगाड़ा छोटा भी होता है,जो ऊँचा होता है। बड़ा नगाड़े के मुख का व्यास एक हाथ होता है तथा स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। इसकों इच्छानुसार बड़ा बनाया जा सकता है। दुंदंभि का वादन काठ के शंकु से बजाया जाता है। इसमें मेघ से गर्जित गंभीर ध्वनि के समान धोंकार ध्वनि की प्रधान रहती है। विवाह उत्सव के समय इसकों बजाया जाता है।

भेरी

भेरी वैदिककालीन वाद्य है। संगीत पारिजात के अनुसार धातु से निर्मित, दो मुख वाली, तीन हाथ दीर्घ, जिसका एक मुख, एक हाथ लम्बे व्यास का मढ़ा होता है। इसका मुख चमड़े से मढ़े और डोरियों से कसे रहते है, जिसमें कांसें के कड़े लगे होते है। यह वाद्य मित्रों को आनन्द देने वाला तथा शत्रुओं के हृदय विदीर्ण करनेवाला माना गया। भेरी को कई संगीत ग्रन्थों में आनद्ध तो कहीं सुषिर कहा गया। जबकि संगीत पारिजात में इसको आनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत रखा गया।

रुँजा

संगीत पारिजात के अनुसार काष्ठ तथा धातु का बना हुआ,यह वाद्य सात मुट्ठी लम्बा होता है तथा इसके मुख का आकार एक बालिश्त का होता है जो कोमल चमड़े से मढ़ा होता है। दोनों ओर के मुखों का चमड़ा डोरी से कसा हुआ होता है, जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दाहिने मुख को एक टेढ़े बाँस से घिसकर तथा बायें को एक लकड़ी द्वारा पीटकर बजाया जाता है।[12]

डमरु

पंडित अहोबल ने डमरु को लगभग दो मुठी लम्बा, बीच में पतला, दो मुखी वाला वाद्य,मुख का व्यास लगभग एक मुठी, जिसको चर्म से ढका जाता है तथा इसके मध्य भाग में रस्सी को बंधा जाता है,वही डोरी दोनों छोरों में लटकती रहती। डमरु को हिलाने से ,वही डोरी दोनों छोरों में लगते ही बजने लगती है। उमापति की इस वाद्य का धारक माना जाता है।

पटह

'संगीत पारिजात' के मतानुसार पटह का अर्थ ढोलक है। उसमें स्पष्ट लिखा है—''पटह ढोलक इति भाषायाम'' और फिर स्पष्ट व्याख्या दी है कि पटह भेरी जाति का वाद्य है जो डेढ़ हाथ लम्बा होता है। किसी-किसी के मत से यह स्थूल चमड़े से मढ़ा होता है। कोई उसे पतले चमड़े से मढ़ता है। यह लकड़ी अथवा हाथ, किसी से भी बजाया जा सकता है।[13]

आधुनिक ढोलक को पुरुष लकड़ी से तथा महिलाएँ हाथ से बजाती है।

चक्रवाद्य

लेखक ने चक्राकार वाद्य को चक्रवाद्य है। एक हाथ चौड़ा एक अंगुलि गंभीर, स्थूल चमड़े से मढ़ा तथा हाथ से बजाने वाला वाद्य अथवा बारह अंगुल लम्बी एक लकड़ी के टुकड़े से बजाया जाने वाला वाद्य है।

हुडुक्क

'संगीत-पारिजात' के अनुसार यह दोमुखा वाद्य सोलह अंगुल लम्बा तथा बीच से कुछ पतला होता है। इसके मुखों का व्यास आठ-आठ अंगुल होता है जो चमड़े की डोरियों से कसे रहते हैं। इनमें छेद होते है तथा दो कड़े लगे रहते हैं। डोरी के अन्त में एक अन्य डोरी होता है। इसी को पकड़कर यह वाद्य बजाया जाता है।[14]

इन दोनों वर्गों के वाद्यों के अतिरिक्त पंडित अहोबल ने संगीत पारिजात में तत तथा आनद्ध वाद्यों के लक्षणों से युक्त वाद्यों को भी वर्णन किया—

1. ढक्का, 2. रवाब एवं 3. करचक्र

ढक्का

ढक्का तत अवनद्ध जाति का दो मुखवाला वाद्य है जो एक हाथ लम्बा होता है। मुख का व्यास अवनद्ध देश में बारह अंगुल तथा अन्य स्थानों पर आठ अंगुल होता है। इसका मुख एक चमड़े से मढ़ा होता है। इस चमड़े से मढ़ा होता है। इस चमड़े के मध्य से तात की एक तन्त्री एक शिरे पर गाँठ देकर निकाल ली जाती है। यह यन्त्र बायें हाथ से नीचे धारण किया जाता है तथा उसी हाथ से उसकी तन्त्री को खीचकर दाहिने हाथ से बजाया जाता है।[15]

रवाब

''रव वहति यद्यस्मात्ततो रवावहः स्मृतः''॥125॥

(संगीतपारिजातः, द्वितीयःकाण्डः,पृष्ठ-91)

अर्थात तन्त्रियों से उत्पन्न झनझनाहट जो वाद्य धारण करता है,उसे रवाब कहते है। इस कथन से पंडित अहोबल ने रवाब का परिचय दिया।

संगीत पारिजात के अनुसार पूर्वोक्त विधान को मानते हुए पाँच हाथ लम्बा नीबू के पेड़ के लकड़ी को लेकर उसमें से आधे अंश को काटकर उसके ऊपरी भाग यानि आनद्ध अंश (दण्ड) में छिद्र कर खुटी में सात तारों को बँधा जाता था। इसमें सार तारों में सात स्वरों का समावेश किया गया। प्रथम चार तार—मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद एवं अन्तिम तीन तारें षड्ज, ऋषभ एवं गान्धार होना अवश्यक है।

रवाब शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में संगीत पारिजात में मिलता है। पंडित लालमणि मिश्र जी के अनुसार तानसेन के वंशजों ने इस वाद्य की प्रतिष्ठा की तथा उन्होंने रवाब के जिस रूप को अपनाया था, वह चित्रा वीणा का विकसित रूप था। यही कारण है कि पंडित अहोबल के समय रवाब एक प्रचलित वाद्य रहा। परन्तु सेनिया के रवाब तथा संगीत पारिजात के रवाब में भिन्नता है।

रवाब को आधुनिक सरोद तथा सारंगी के बीच का वाद्य माना गया। सेनिया वाले रवाब को त्रिकोण से बजाते थे। संगीत पारिजात में किस

वस्तु से रवाब को बजाया जाता है इस विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। अरब में रवाब को गज से बजाते है जबकि भारत में इसे जवा से बजाते है। रवाब का परिवर्तित एवं विकसित रूप आधुनिक वाद्य सरोद में देखा जा सकता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में रवाब को अपनाने का श्रेय पंडित अहोबल को जाता है।

करचक्र

करचक्रं केचिदाहुर्दशांगुलप्रमाणातः ॥
चतुरंगुलमानेन गांभीर्य तस्य संमतम् ॥
पीडयेद्वामहस्तेन दक्षिणेनैव वादयेत् ॥ 29 ॥

(संगीतपारिजातः, द्वितीयःकाण्डः, पृष्ठ-92)

करचक्र दश अंगुल मोटा तथा चार अंगुल लम्बा चक्राकार वाद्य, जिसको बायें हाथ से पकड़कर दायें हाथ से बजाया जाता था।

आगे बढ़ते हुए पंडित अहोबल कहते है—''कई वाद्यों की कल्पना उन्होंने की है, परन्तु कुछ ही वाद्यों को इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है।''

सुषिर वाद्य

अथ वक्ष्यामि सुषिरं तल्लेदाः स्यूरनेकधा ॥
सुनादी मुरली पावा श्रंगो नागसरस्तथा ॥ 31 ॥
कहली मुखवीणा च वक्री तुंदकिनी परा ॥
चंगुः शंखः पत्रिका च स्वरसागर इत्यपि ॥ 32 ॥

(संगीतपारिजातः, द्वितीयः काण्डः, पृष्ठ-92)

पंडित अहोबल ने सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत सुनादी, मुरली, पावा, श्रंग, नागसर, कहली, मुखवीणा, बक्री, तुंदकिनी, चंगु, शंख, पत्रिका तथा स्वरसागर वाद्यों को समावेश किया गया।

सुनादी

संगीत पारिजात में सुषिर वाद्यों में सर्वप्रथम सुनादी का वर्णन किया गया। सुनादी धतुरे फूल के आकार के समान,एक हाथ लम्बी,रक्त चन्दन के काठ से निर्मित सुषिर वाद्य है। इसका छिद्र बेर के बीज के सामान होती है,जिसमें एक अंगली के व्यवधान में आठ छिद्र होते है। इसमें बाँस की एक नलिका होती है,जो चार अंगुल लम्बी होती है। नलिका के उपरी भाग में वायु को भरने के लिए हाथी के दाँत व काठ की गोल चक्री लगाया जाता है और भोगली के मुख में कलस के साथ एक रिड लगाया जाता है। इसको मुख में रखकर वायु भरे जाते है। इसके पश्चात सुनादी के वादन विधि को वर्णन किया गया।

पंडित लालमणि मिश्र जी के कथनानुसार पंडित अहोबल ने शहनाई को दृष्टि में रखकर ही सुनादी का वर्णन किया है अथवा सुनादी ही बाद में शहनाई बन गयी। सुन्दर नाद उत्पन्न करनेवाली को सुनादी तथा फूँक से बजानेवाले वाद्यों के राजा को शाहनेय। अभिप्राय दो शब्दों का अर्थ एक जैसा ही है।[16]

मुरली

मुरली वंशी का एक भेद है। वह पक्का बाँस के बने, तर्जनी के व्यवधान में छिद्र होते है। संगीत रत्नाकर के समान इसमें भी चार छिद्र माने गये तथा बजाने के लिए मुख रन्ध्र होता है। पूर्व मतों के अनुसार वादन एवं नाक के द्वारा वायु को भरने एवं छोड़ना हानिकारक माना गया।

पावा

अहोबल ने ''पावा'' को छिद्र युक्त,अँगूठे के समान वाली मुरली के समान बताया है।[17] संगीत रत्नाकर तथा मानोल्लास में पाव को नौ अंगुल दीर्घ बताया गया।

श्रृंग

पंडित अहोबल के अनुसार श्रृंग सींग के आकार जैसा वाद्य है। यह भैंस के सींग अथवा धातु बनाया जाता है। इसके मुख को होठ पर रखकर बजाने से नाद की उत्पत्ति हैं। इसमें स्वर उग्र उत्पन्न होने से, इसको रणसिंगा नाम दिया गया।

आधुनिक युग में श्रृंग हिरण अथवा बारहसिंगा के सींग से बनते हैं। पीतल के भी श्रृंग बनाये जाते हैं। हिरण की सींग की बनी हुई सिंगी प्रायः जोगी बजाते देखे जाते हैं। धातु के बने हुए श्रृंग का वादन राजस्थान, नेपाल तथा दक्षिण में अब भी होती दिखाई पड़ता है। नेपाल में इसे कोमिकी अथवा कलहाय कहते हैं तथा दक्षिण में कौम्बू के नाम से पुकारते हैं।[18]

नागसर

लेखक ने नागसर को लम्बे आकार का एक तुम्बा लेकर उसके पेंदे में इतना बड़ा छेद करते है कि उसमें से दो बाँसुरी के आकार के बाँस आ सके। इन बाँसुरियों में ऊपर की ओर दो रीड लगाए जाते है, जिन्हें मोम से चिपकाए जाते है। उसी प्रकार नीचे के पेंदों को भी मोम से चिपकाया जाता है, ताकि वायु बाहर न निकल पाए।

कहली

पंडित अहोबल के अनुसार चार हाथ प्रमाण, धातु से निर्मित वाद्य 'कहली' कहलाता हैं। इसकी आकृति धतूरे के फूल जैसी तथा महान लोगों के द्वारा उनके घरों में बजाया जाता है। आगमन तथा प्रस्थान के के समय इसके नाद को शुभदायक माना गया। इस वाद्य की ध्वनि मनुष्य के कण्ठस्वर के समान कोमल माना गया। संगीत रत्नाकर, मानोल्लास,संगीत समयसार आदि ग्रन्थों में इस वाद्य को कहला कहा गया।

मुखवीणा

बारह अंगुल प्रमाण का नरसल लेकर भूर्जपत्र में लपेट दिया जाए ,तब उसे मुखवीणा कहा गया। मुँह से फूँककर इस वाद्य को बजाया जाता है।

बक्री

तीन हाथ प्रमाण नली, जो तीनों स्थानों में कटोरीनुमा बनी हो तथा जो सुखप्रद हो, उसे बक्री कहते है। इसमें षड्ज,पंचम एवं तार सप्तक के स्वर सर्वदा सुशोभित होते है। इसको प्रचार में रणसिंग कहते है।[19]

तुंदकिनी

संगीत पारिजात में तुंदकिनी के विषय में विस्तार से वर्णन नहीं किया गया। यहाँ इस वाद्य को एक लम्बे आकार का सात स्वरों से युक्त वाद्य माना गया। संगीत रत्नाकर में तुण्डकिनी को दो हाथ दीर्घ कहला माना गया। पंडित लालमणि मिश्रा जी के अनुसार वर्तमान तुरही ही तुण्डकिनी है, जो दो से चार हाथ लम्बी होती है। संस्कृत में सर्पाकार तुरही का नाम ''वक्री'' है।

चंगु

संगीत ग्रन्थों में मुखचंग को चंगु कहा गया है। 'संगीत पारिजात' के अनुसार चंग का आकार 'त्रिशूलवत्' होता है, जिसके पाँच भागों की लम्बाई चार अंगुल तथा मध्य भाग (जो पार्श्व भाग में पतला होता है) की पाँच अंगुल होती है। बाहर की ओर लम्बाई अधिक होती है। विज्ञजन मोम लगाकर इसके स्वरों को ऊँचा और नीचा करते तथा बीच के भागों को दाँतों से दबाकर बजाते हैं।[20]

शंख

'संगीत पारिजात' में लिखा है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल होता है। उसमें मुख का छेद बेर के बीज के बराबर होता है तथा उसके ऊपर पतली धातु का कलश बनाते हैं। इस कलश को मुख में रखकर शंख को वाद्य की भाँति बजाया जाता है।

पत्रिका

पत्रिका भी चंगु के समान वाद्य है। इसका आकार सुरजमुखी के आकार की तथा लम्बाई दो अंगुली की आधी एवं चौड़ाई एक अंगुली के समान होती है अथवा विभीतक या बहेड़े के वृक्ष से निर्मित होती है। मुख में दोनों दाँतों के बीच में रखकर बजाया जाता है। इससे उत्पन्न पाटाक्षर पक्षियों के शब्दों के समान माना गया। पत्रिका का उल्लेख संगीत पारिजात से पूर्व किसी भी ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

स्वरसागर

इस शृंखला का अन्तिम वाद्य स्वरसागर है। अहोबल ने इस वाद्य के विषय में बतलाया है कि यह लकड़ी का बना हुआ तीन हाथ लम्बा होता है,जिसका विस्तार डेढ़ हाथ का होता है। उसके दाहिने भाग में दो पावा (लम्बावत बाँसुरी) जोड़ा जाता है,जिसमें शुद्ध-विकृत स्वरों के वादन के लिए 24 रन्ध्र होता हैं। इसे उद्घाटन के अवसर पर बजाया जाता है।[21]

घन वाद्य

'घन' शब्द 'हन हिसागत्यो:' पीटने या मारने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली 'हन' धातु से निष्पन्न होता है। वे वाद्य जो ठोक लगाकर बजाए जाते हैं, 'घन' कहलाते है।[22] घन एक ठोस आकार वाला वाद्य है, जिसके स्वरों में परिवर्तन नहीं होता। दूसरें शब्दों में ये ठोस धातु लकड़ी आदि से निर्मित होता है, जिसे ठोककर या ठकराकर बजाया जाता है, वे 'घन वाद्य' कहते हैं।

संगीत पारिजात में घन वाद्यों के अन्तर्गत कास्यताल, ताल, झल्लरी, घंटा, जयघंटा, घट, जलयंत्र, क्षुद्र घंटा, कल्पतरु तथा काष्ठ ताल को वर्णन किया गया।

ताल

छे अंगुली प्रमाण कांसे से निर्मित वाद्य को 'ताल' कहा गया। 'ताल' के बीच में दो अंगुली गहराई है साथ ही दोनों हिस्सों के मध्य में छेद होती है, जिसमें डोरी डालकर भीतर से गाँठ लगा दी जाती है,जिससे डोरी छेद से न निकल पाए।

ताल को एक बड़े आकार का मंजीरा कहा जा सकता है।

झल्लरी

अहोबल के मतानुसार यह अठारह अंगुल व्यास की, अठारह पल भारी, मध्य से दो अंगुल गहरी,डोरी से युक्त होती है तथा ढीले हाथ से बजायी जाती है।[23] यह ताल का ही बृहद रूप है।

घट

घट का मुख शायद छ: अंगुली है। इसके निचली भाग की परीधि तीन हाथ होती है साथ ही मुख के पार्श्वदेश में बाएँ हाथ से बजाया जाता है। संगीत पारिजात में घट को घन वाद्य के अन्तर्गत रखा गया हैं।

जलयंत्रम

संगीत पारिजात में जलतरंग को 'जलयंत्र' के नाम से उल्लेख किया गया। इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम 'जलयंत्र' का वर्णन किया गया। इसकों घन वाद्यों के वर्ग के अन्तर्गत रखा गया। पंडित अहोबल के अनुसार बाईस कटोरियों से युक्त जलयंत्र को पूर्ण एवं उसके अतिरिक्त कम संख्या में प्रयुक्त कटोरियों को 'मध्यम जलयंत्र' कहते है। इन पात्रों से मन्द्र स्वरों को प्राप्त करने के बड़े एवं तार स्वरों के लिए छोटे पात्रों को व्यवहार किया गया। पात्रों में आवश्यकतानुसार जल भरकर स्वरों को मिलाने का संकेत दिया गया।

बारह अंगुल की लम्बाई की माप का वेत अथवा बाँस की पतली डण्डियों से वादन किया जाता है। डण्डी से जल को हिलाने से गमक आदि की भी उत्पत्ति की जा सकती है।

क्षुद्र घंटा

फल के भीतर काले रंग की बीज या गुठली, जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे क्षुद्र घंटा कहते है। इसका बाहरी अंश ताबे,कांसे तथा चाँदी से सुसज्जित अंगुली के नख के आकार की होती है, जिसके बीच में लोहे की गोली को इसप्रकार स्थापित किया जाता है ताकि बजाते समय मार्ग में बाधा उत्पन्न न करें। इन क्षुद्र घंटाओं को घोड़े के गले में पहनाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के घंटे को भी यहाँ उल्लेख किया गया, जिसको बदरी के बीज यानि बेर के बीज के समान का माना गया। इस प्रकार के क्षुद्र घंटें छोटे होते है। इन्हें छोटी-छोटी बालक खेलते समय तथा नर्तकी नृत्य करते समय पहनते हैं।

प्राचीन तथा मध्यकाल में इन घुँघरुओं के नाम क्षुद्रघण्टिका, घर्घरिका, मर्मरा, घुँघरा आदि प्रचलित थे। इन्हें बनाने के लिए लोहा, काँसा, पीतल, फूल इत्यादि धातुओं का प्रयोग होता था।[24] संगीत पारिजात में घुँघरु को क्षुद्र घंटा कहा गया।

कल्पतरु

कल्पतरु आकार में घंटा से बड़ा होता है। इसका वजन अधिक होने के कारण हाथ में उठाकर बजाना असंभव है साथ ही इसमें पकड़ने के लिए कोई दण्ड नहीं होता। यही कारण है कि इसको किसी मजबूत कड़े में लटकाकर ढोलक को दाहिने हाथ में पकड़कर बजाया जाता है।

काष्ठताल

मृदंग के साथ बजाए जाने वाले वाद्य को काष्ठताल कहते हैं। इसकी लम्बाई दस अंगुली से भी अधिक है। मृदंग वादन करते समय लय में शिथिलता न आए, वादन विघ्न रहित हो इसलिए काष्ठताल को बजाया जाता था।

वाद्यों के विवेचन के पश्चात पंडित अहोबल कहते कि दुसरे देशों में यानि विदेशों में भी वाद्यों के अनेक प्रकारों को बजाया जाता है। सुषिर एवं घन वाद्यों के देवता वायु को माना गया। सभी वाद्यों के पाटाक्षर पृथक-पृथक माने गए। साथ ही पूर्व आचार्यों के द्वारा वर्णित पाटाक्षरों के वादन को ही वाद्यों के वादन के अनुकूल माना गया। इस प्रकार सभी वाद्यों के पाटाक्षरों को वर्णन करते हुए पंडित अहोबल ने संगीत पारिजात के वाद्याध्याय का समापन किया।

इस प्रकार संगीत पारिजात मध्यकालीन संगीत परम्परा को जानने की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। संगीत पारिजात में वर्णित वाद्यों में से कई वाद्यों का विकसित एवं परिवर्तित रूप आधुनिक शास्त्रीय संगीत के वाद्यों तथा लोक वाद्यों में देखा जा सकता है। कई वाद्यों को उसी नाम से तो कई वाद्यों को नवीन नाम देकर प्रचलित संगीत में बजाया जा रहा है। संगीत पारिजात एक ऐसा ग्रन्थ है जिसको आधार मानकर ही परवर्ती विद्वानों एवं संगीतज्ञों ने वाद्यों के बनावट, मेलन विधि एवं वादन शैली में नवीनता लाए।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, ताल-प्रकाश, रूबी प्रकाशन, B 626 गुरु तेग बहादुर नगर, इलाहाबाद 211016, प्रथम संस्करण-1996, पृ. 216
2. भार्गव, अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4697/5-21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, द्वितीय संस्करण-2009, पृ. 71
3. मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, दिल्ली-110003, चौथा संस्करण-2011, पृ. 120
4. चक्रवर्ती, इन्द्राणी, स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, चौखम्भा पब्लिशर्स, गोपाल भवन, के-17/109, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-221001, संस्करण-2000, पृ. 363
5. Op.cit, मिश्र, लालमणि, पृ. 117
6. वही, पृ. 107
7. Op.cit, भार्गव, अंजना, पृ. 100
8. Op.cit, मिश्र, लालमणि, पृ. 92
9. वही, पृ. 22
10. वही, पृ. 204
11. वही, पृ. 204
12. वही, पृ. 208
13. वही, पृ. 173
14. वही, पृ. 145
15. वही, पृ. 156
16. वही, पृ. 229
17. Op.cit, भार्गव, अंजना, पृ. 122
18. Op.cit, मिश्र, लालमणि, पृ. 231
19. वही, पृ. 230
20. वही, पृ. 187
21. जायसवाल, राधेश्याम, भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास, वाराणसेय संस्कृत संस्थानम्, सी 27/170ए, मातृ-स्मृति मन्दिर, जगतगंज, वाराणसी, प्रथम संस्करण, मार्च 1986 पृ.113
22. Op.cit, भार्गव, अंजना, पृ. 175
23. Op.cit, मिश्र, लालमणि, पृ. 152
24. वही, पृ. 242